भगवान श्री
कुंदकुंदाचार्य
विशेषांक

वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

December - 2025

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

आचार्यशिरोमणि भगवान
श्री कुंदकुंदआचार्यदेव के आचार्यपदवीदिन
मागशर वदि अष्टमी (१२–१२–२५) के मंगल अवसर पर
उनके चरणोंमें कोटी कोटी वंदन !!

हे भव्य ! लोकमें नमन करनेयोग्य पुरुषभी जिसको नमस्कार करते हैं, ध्यानेयोग्य पुरुष भी जिसका निरन्तर ध्यान करते हैं तथा स्तुति करनेयोग्य पुरुष भी जिसकी स्तुति करते हैं – ऐसा परमात्मा इस देहमें ही विराजता है। उसको जैसे भी बने वैसे जान।

(श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव, मोक्षपाहुड, गाथा–१०३)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्–२५५२, अंक–३३६, वर्ष–२७, दिसम्बर–२०२५

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके श्री 'परमागमसार'में से चुनी हुई 'कहानरत्नकी किरणें'

जब तक अन्तरमें ऐसा नहीं भासित होता कि पैसेमें सुख नहीं है, पुण्य–पापमें सुख नहीं है – तब–तक जीव आत्म–सुखके लिए पुरुषार्थसा नहीं होता। २२८

*

इस बातको समझनेके लिये अनन्त पुरुषार्थ चाहिए, बहुत अंतर–पात्रता चाहिए, सर्व पदार्थोंकी सुख–बुद्धि उड़ जानी चाहिए। इस प्रकारकी उत्कृष्ट पात्रता चाहिए। इसकी पर्यायमें प्रबल योग्यता चाहिए । श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं कि ''तूं तेरे दोषसे दुःखी हो रहा है, तेरा दोष इतना ही है कि परको अपना मानना व अपनेको भूल जाना।'' २२९

*

जगत सुखका इच्छुक है, परन्तु सुखके कारणको नहीं जानता। संसारी जीव लेशमात्र भी दुःख नहीं चाहते पर दुःखके कारणमें लीन रहते हैं। २३०

*

यदि कुछ भी दुर्धर और दुष्कर है – तो वह आत्मप्राप्तिका पुरुषार्थ है, यही उत्तमोत्तम पुरुषार्थ है । शेष सभी पुरुषार्थ थोथे हैं। २३१

*

जो विचारकी भूमिकामें खड़े हैं। उन्हें भक्ति आदिके राग आये बिना नहीं रहते, ऐसा ही (परिणाम) स्वभाव है। भक्ति आदिके राग होने पर भी वे हेय हैं। २३२

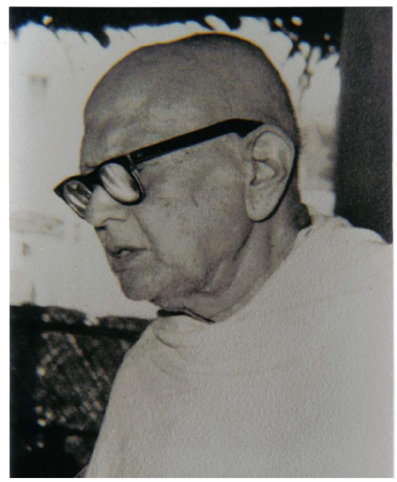

*

जिनके सिर पर जन्म–मरणरूपी तलवार लटक रही है – फिर भी जो संयोगोंमें खुशी मानते हैं, वे पागल हैं। २३३

*

सत्–प्राप्तिके लिए यदि सारी दुनिया बिक जाए, पूरा जगत चला जाए तो भी आत्माको न गँवाया जाए। २३४

*

भगवानकी मूर्तिके जैसे ही भगवानके आगमनका बहुमान होना चाहिए। आगम तो

मुनियोंका अक्षर–देह है। २३५

*

समझके द्वारा ज्ञानमें जैसे–जैसे भाव–भासन विकसित होता जाता है, वैसे–वैसे ज्ञानकी सामर्थ्य बढ़ती जाती है और ऐसी बढ़ती हुई ज्ञान सामर्थ्य द्वारा मोह शिथिल होता जाता है। ज्ञान जब सम्यक् रूपसे परिणमित होता है तब मोहसमूह नाशको प्राप्त होता है। अतः ज्ञानसे ही आत्माकी सिद्धि है , ज्ञानके अतिरिक्त आत्मसिद्धिका अन्य कोई साधन नहीं है। २३६

*

अन्य जीवकी निन्दा करनेका भाव तो आस्रव है, और कागजमें हुई शब्द रचना पुद्गलकी पर्याय है। इनमें लिखनेवाला जीव कहीं भी संबंद्ध नहीं है और स्वयंको अस्थिरतासे उठनेवाले विकल्प भी आत्मामें कहाँ हैं? ये भी आस्त्रव हैं। इस प्रकार ज्ञानी, सामने चाहे जैसा विरोधी जीव हो उसे भी पूर्ण आत्मरूपमें ही देखते हैं – यही वीतरागी समता है। ऐसे ज्ञान बिना सहज समता होना संभव ही नहीं। २३७

*

जिसकी महिमा की होगी, उसकी महिमा मृत्युके समय भी नहीं छूटेगी। राग–द्वेष और संयोगकी कीमत की होगी तो वह नहीं छूटेगी। आत्माकी महिमा की होगी तो नहीं छूटेगी, जो कीमती लगा होगा – उसकी कीमत नहीं छूटेगी। २३८

*

जो विचक्षणता आत्माको दुःखसे मुक्त न करे – वह विचक्षणता ही क्या? २३९

*

(इस जीवन कालमें) धन उपार्जनकी वृति तो आत्मघात ही है। वास्तवमें यह तो आत्मलाभका अवसर है – आत्माके आनन्दकी कमाईका अवसर है , इसे न चूके। २४०

*

शुभरागकी मिठास जीवको मार डालती है और परसत्तावलंबी ज्ञानकी मिठास भी जीवको मार डालती है। २४१

*

जिसने जीवनकालमें संयोगके साथ ही भावी वियोगको चाहा है, अनुकूलतामें भी जिसको उसके वियोगकी भावना है, उसको उनके वियोगके समय खेद नहीं होता। २४२

*

देह तो तुझे छोडेगी ही, पर तूँ देहको (दृष्टिमें) छोड़े तो तेरी बलिहारी है – यह तो शूरवीरोंका खेल है। २४३

*

हे भगवान! आपने जो चैतन्यभंडार खोल दिया है – उसके सामने कौन ऐसा होगा कि जिसको चक्रवर्तीका वैभव भी तृणवत् न लगे? आहा! अन्तर–अवलोकनमें तो अमृतरस झरता है और बाह्य अवलोकनमें तो विष सा अनुभव होता है। २४४

*

जिन्हें अशुभके फलमें द्वेष है, उन्होंने अशुभ भावको हेय माना ही नहीं। शुभभावके फलमें जिन्हें गुदगुदी होती है और मिठास लगती है – उन्होंने शुभभावको हेय माना ही नहीं। २४५

*

यदि ब्रह्मचर्य आदि व्रत ले,वस्त्रादि छोड़े

तो उसे ऐसा लगता है कि मैं धर्ममार्गमें कुछ आगे बढ़ा हूँ , परन्तु आत्मभान-बिना उसने उल्टे शल्यकी ही वृद्धि की है – मिथ्यात्वकी पुष्टि की है। २४६

*

एक बार अन्तरदृष्टि से प्रतीति कर कि मैं सिद्ध समान अशरीरी हूँ, शरीरका स्पर्श ही नहीं करता, अभी ही शरीरसे मुक्त हूँ – एसी श्रद्धा न करने से देह छूटनेके समय शरीरके प्रति तेरी (एकत्व) लालसा तीव्रतर होती जायेगी। २४७

*

भाई! संयोगोंका त्याग हुआ उससे तेरी पर्यायमें क्या अन्तर पड़ा? जब बाहरके हीनाधिक संयोगोंका लक्ष्य छूट जाए, कषायकी मन्दता या तीव्रताका भी लक्ष्य छूट जाए और तेरी पर्याय चैतन्य वस्तुको लक्ष्य कर तद्रूप परिणमित हो तभी मिथ्यात्वका त्याग होता है – यही यथार्थ त्याग है। २४८

*

रागको जानने से ज्ञान मलिन नहीं होता, पर रागको अपना मानने से ज्ञान मलिन होता है। 'राग मेरा है' ऐसा मानने वाला अपने जीवका घात करता है और 'राग मेरा नहीं' – ऐसा मानने वाला अपने जीवकी रक्षा करता है। २४९

*

पुण्य-पुण्य करके अज्ञानी पुण्यकी मिठासका आस्वादन करता है परन्तु पुण्यकी मिठास तो उसका खून करती है । मिथ्यात्व-भाव तो कसाईखाना है। मिथ्यात्वका पाप सात व्यसनसे भी अनन्तगुणा (भयंकर) है, उसका पोषण करनेवाला तो कसाईखाने खोलते हैं। २५०

*

पर्याय-दृष्टि वाले जीव दया-दान, पूजा-भक्ति, यात्रा, प्रभावना आदी अनेक प्रकारके शुभभावोंके कर्ता होकर, अन्यकी अपेक्षा ''मैं कुछ अधिक हूँ'' ऐसा अहंकार करते हूए, मिथ्यात्व भावको दृढ़ करते हैं और निश्चय स्वरूप मोक्ष-मार्गको लेशमात्र भी नहीं जानते। २५१

*

प्रश्न :- तत्त्वका श्रवण-मनन करने पर भी सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता?

उत्तर :- सचमुच तो अन्तरमें रागके दुःखसे थकान लगी ही नहीं, अतः विश्रामका-शान्तिका स्थान हाथ ही नही आता। वास्तवमें अन्तरसे दुःखसे थकान लगे तो अन्तरमें उतरने पर विश्रामका स्थान हाथ लगे। सत्यके शोघकको सत्य न मिले – यह सम्भव ही नहीं। २५२

*

भगवानकी देशना होती है – पर उससे शासनका क्या होता है व किसको लाभ होता है, इस ओर उनका उपयोग जाता ही नहीं। इसीप्रकार सम्यग्दृष्टिको भी विकल्प उठते हैं और वाणी निकलती है, पर वे यह नहीं देखते कि किसको लाभ हुआ – कितना लाभ हुआ। वे तो निजात्माको ही देखते हैं। २५३

*

यह आत्मा स्पर्श-रस आदि गुणोंसे रहित और पुद्गल तथा अन्य चार अजीवोंसे भिन्न है, उसे भिन्न करनेका साधन तो चेतना-गुणमयता

है। राग और विकल्पसे भी भिन्न करनेका साधन तो चेतना-गुणमयता ही है। जानन-शक्ति, चेतना-गुणमय-शक्ति यही आत्माको अन्य द्रव्योंसे भिन्न करनेका साधन है। २५४

*

भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूपसे विराजमान है उसे अतीन्द्रिय ज्ञानसे जाना जाता है, पर वह इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता। ज्ञायक आत्मा लिंगों द्वारा अर्थात् इन्द्रियों द्वारा जाननेका कार्य नहीं करता। जो इन्द्रियों द्वारा जाननेका कार्य करे वह आत्मा नहीं है। इन्द्रियाँ अनात्मा हैं, इसलिए जो उनके द्वारा जाननेका कार्य करे – वह ज्ञान ही अनात्मा है। शास्त्र-श्रवण द्वारा जो ज्ञान होता है उस ज्ञानको आत्मा नहीं कहते हैं। शास्त्र-श्रवण करते हुए खयाल आता है कि ''ऐसा कहते हैं'' -ऐसा जो ज्ञान होता है उसे इन्द्रिय द्वारा हुआ होनेसे आत्मा नहीं कहते। २५५

*

आत्मा अतीन्द्रिय-ज्ञानमय है, इन्द्रिय-ज्ञानमय नहीं। इन्द्रियों द्वारा शास्त्र-वांचन और श्रवणसे हुआ ज्ञान अतिन्द्रिय-ज्ञान नहीं, आत्मज्ञान नहीं, वह तो खंडखंड ज्ञान है। ११ अंग और ९ पूर्वका ज्ञान परसत्तावलंबी-ज्ञान है, वह बन्धका कारण है। यहाँ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि प्रभु! एक बार सुन; आत्माको अतीन्द्रिय ज्ञानसे ही जानना होता है, इन्द्रिय ज्ञानसे जानना – सो आत्मा नहीं है। २५६

*

जिन्हें इन्द्रियज्ञानका रस चढ़ा है – उन्हें अतीन्द्रिय-ज्ञान नहीं होता। २५७

*

सम्यग्दृष्टिका ज्ञान अतिसूक्ष्म है, फिर भी वह राग और स्वभावके बीचकी सन्धिमें ज्ञानपर्यायका प्रवेश होते ही प्रथम बुद्धिगम्य भिन्नता करता है। ख्यालमें आ सके इस प्रकार (प्रथम ही) राग और स्वभाव दोनोंको छेदता है। बुद्धिगम्य छेदन याने कि, ख्यालमें आ सके इस प्रकार दोनोंमें भिन्नता करता है। सम्यक्दर्शन प्राप्त करनेकी और सम्यक्दर्शनको कायम रखनेके मार्गकी यह बात है। प्रथम यह बात सुनें; सुनकर विचार करें, और पीछे प्रयत्न करें। २५८

*

किस रीतिसे भिन्न-भिन्न करते हैं? – कि स्व-पर-ग्राहक लक्षणयुक्त चैतन्यप्रकाश है; उस चैतन्यको जानकर और रागको जानकर भिन्न-भिन्न करते हैं। स्व-पर-ग्राहक – ऐसा ज्ञान-प्रकाश स्वको जानता है और परको भी जानता है, लेकिन परको जानकर उसे भिन्न रखता है। चैतन्यलक्षण द्वारा स्वको लक्षित करते ही ध्रुवके पूर (प्रवाह) पर लक्ष्य जाता है। २५९

*

प्रथम यह निर्णय तो करे कि ऐसे ही वस्तु प्राप्त होती है। व्रत-तप-भक्ति-यात्रा या धन खर्चसे प्राप्त हो सके – वस्तु ऐसी नहीं है। त्रिकाल अस्तित्वमय-असंख्य प्रदेशी-शुद्ध वस्तु सर्वकालमें प्रत्यक्ष है – प्रथम ही ऐसा निर्णय करना चाहिए। वस्तुका स्वरूप ही प्रत्यक्ष है, स्वरूप परोक्ष हो ही नहीं सकता। २६०

*

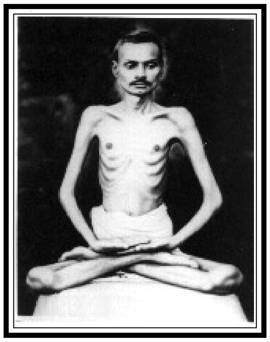

– परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी राजहृदय !!

पत्रांक – ३९४

बंबई, श्रावण वदी १०, १९४८

मन महिलानुं रे वहाला उपरे, बीजां काम करंत।
तेम श्रुतधर्मे रे मन दृढ धरे, ज्ञानाक्षेपकवंत ।। – धन.

घरसंबंधी दूसरे समस्त कार्य करते हुए भी जैसे पतिव्रता (महिला शब्दका अर्थ) स्त्रीका मन अपने प्रिय भरतारमें लीन रहता है, वैसे सम्यगदृष्टि जीवका चित्त संसारमें रहकर समस्त कार्योंको करते हुए भी ज्ञानीसे श्रवण किये हुए उपदेशधर्ममें तल्लीन रहता है।

समस्त संसारमें स्त्रीपुरुषके स्नेहको प्रधान माना गया है, उसमें भी पुरुषके प्रति स्त्रीके प्रेमको किसी प्रकारसे भी उससे विशेष प्रधान माना गया है, और उसमें भी पतिके प्रति पतिव्रता स्त्रीके स्नेहको प्रधानमें भी प्रधान माना गया है। वह स्नेह ऐसा प्रधान–प्रधान किसलिये माना गया है? तब जिसने सिद्धांतको प्रबलतासे प्रदर्शित करनेके लिये उस दृष्टांतको ग्रहण किया है, ऐसा सिद्धांतकार कहता है कि हमने उस स्नेहको इसलिये प्रधानमें भी प्रधान समझा है कि दूसरे सभी घर संबंधी (और दूसरे भी) काम करते हुए भी उस पतिव्रता महिलाका चित्त पतिमें ही लीनरूपसे, प्रेमरूपसे, स्मरणरूपसे, ध्यानरूपसे, इच्छारूपसे रहता है।

परंतु सिद्धांतकार कहता है कि इस स्नेहका कारण तो संसार प्रत्ययी है, और यहाँ तो उसे असंसार–प्रत्ययी करनेके लिये कहना है; इसलिये वह स्नेह लीनरूपसे, प्रेमरूपसे, स्मरणरूपसे, ध्यानरूपसे, इच्छारूपसे जहाँ करने योग्य है, जहाँ वह स्नेह असंसार परिणामको प्राप्त होता है उसे कहते हैं।

वह स्नेह तो पतिव्रतारूप मुमुक्षुको ज्ञानी द्वारा श्रवण किये हुए उपदेशादि धर्मके प्रति उसी प्रकारसे करना योग्य है; और उसके प्रति उस प्रकारसे जो जीव रहता है, तब 'कान्ता' नामकी समकित संबंधी दृष्टिमें वह जीव स्थित है, ऐसा जानते हैं।

ऐसे अर्थसे भरे हुए ये दो पद हैं; वे पद तो भक्ति प्रधान हैं, तथापि उस प्रकारसे गूढ़ आशयमें जीवका निदिध्यासन न हो तो क्वचित् अन्य पद ज्ञानप्रधान जैसा भासित होता है, और आपको भासित होगा ऐसा जानकर उस दूसरे पदका वैसा भास बाधित करनेके लिये पत्र पूर्ण करते हुए फिर मात्र प्रथमका एक ही पद लिखकर प्रधानरूपसे भक्तिको बताया है।

भक्तिप्रधान दशामें रहनेसे जीवके स्वच्छंदादि दोष सुगमतासे विलय होते हैं; ऐसा ज्ञानीपुरुषोंका प्रधान आशय है।

*

(शेष पत्रांक अगले अंकमें..)

देखो! भावनाकी ताकत!!

(अनुभव संजीवनी बोल-७२० पर प्रवचन)

- पूज्य भाईश्री शशीभाई

स्वरूपप्राप्तिकी सुंदर भावना ज्ञानको निर्मल करती है। मति-मलिनताको पिघालती है, वक्रताको मिटाती है, परिणामतः परमात्मा सधता है; ऐसा विवेक जब उत्पन्न होता है तब द्रव्यश्रुतका सम्यक् अवगाहन होता है। सर्व श्रुतका केन्द्रस्थान सर्वोत्कृष्ट ऐसा परमपद है। वह निजपद है। उसमें अनंत चैतन्य-अमृतरस भरा है। उसके स्वस्वादरसरूप अनुभवको स्वआचरण - स्वरूपविश्राम, साम्यभावरूप धर्म कहा है। इस निज कल्याणसे तृप्ति होती है जो सुखरूप है और अनन्त सुखका मूल है। फिर रंचमात्र भी दुःख नहीं रहता। ये सभीका मूल भावना है। कोई भी जीव कभी भी उस भावनामें आ सकता है। (यदि) भावनाका महत्त्व समझमें आये तो स्व-परकी भावना-विरुद्धता नहीं होती। (७२०)

'स्वरूपप्राप्तिकी सुंदर(रूढ़ी) भावना ज्ञानको निर्मल करती है।' 'रूढ़ी' नाम सुंदर। स्वरूपप्राप्तिकी भावना यदि प्रबल हो तो ज्ञानको निर्मल करती है। साथ ही *'मति मलिनताको पिघालती है,..'* मतिमें जो अनादिसे मलिनता है, मति विपर्यास जो है उसे कमज़ोर कर देती है।

मुमुक्षु :- मति अर्थात् बुद्धि या ज्ञान?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, बुद्धि। *'वक्रताको मिटाती है,..'* और असरलताको मिटाती है। अतः दो काम हुए, एक तो मति निर्मल होती है, ज्ञान निर्मल होता है जिसके *'परिणामतः परमात्मा सधता है;'* स्वरूप प्राप्तिकी भावनाके फलस्वरूप आखिरकार परमात्माकी प्राप्ति होती है। भावनामें ऐसा भाव गर्भित है। ऐसा विवेक जब उत्पन्न होता है तब, ऐसा विवेक प्रकट होनेपर *'द्रव्यश्रुतका सम्यक् अवगाहन होता है।'* द्रव्यश्रुत अर्थात् ज्ञानीपुरुषोंकी वाणी या शास्त्र, इसकी सही समझ आती है। सम्यक् अवगाहन होता है तब यथार्थ समझ आती है। वरना शास्त्र पढ़ते समय (वहाँ) शास्त्रमें कहा हो कुछ और ये समझे कुछ और - ऐसा मतिदोषके कारण होता है। भावनाको लेकर ऐसा मतिदोष नहीं रहता है और यथार्थ समझना होता है। शास्त्रको / द्रव्यश्रुतको फिर वह यथार्थ समझता है।

मुमुक्षु :- केवल भावनामें आनेसे इतना?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, किन्तु सच्ची भावना, ऊपर-ऊपरकी नहीं, परन्तु भावना भीतरकी होनी चाहिये जब तो!

मुमुक्षु :- मिथ्यात्वमें होनेके बावजूद भी अंतरकी भावना होनेसे...

पूज्य भाईश्री :– हाँ... देखिये! नींवका सारा काम मिथ्यात्वमें ही होता है फिर उसका फल सम्यक्त्वमें आता है। सम्यक्दशा तो किसी कारणका कार्य है कि नहीं? तो सम्यक्दशा होनेसे पहले कारण तो सारे मिथ्यात्वदशामें ही होते हैं कि और कहीं होते हैं? अतः वैसे तो तमाम संसारी जीव मिथ्यादृष्टि हैं परन्तु एक मुमुक्षुकी श्रेणी अलग है इसमेंसे। मुमुक्षु है वह मिथ्यात्वको क्षीण करता जाता है। क्या करता जाता है? मिथ्यात्वको क्षीण करनेका **process** उसका नाम मुमुक्षुदशा! मंदिर आये, नमन करे, पैसोंका समर्पण करे इसलिए मुमुक्षुदशा है सो बात नहीं। वह इसका **process** है। यानी कि वह मिथ्यादृष्टि तो है ही और जगतके दूसरे–दूसरे जीव भी मिथ्यादृष्टि तो हैं ही परन्तु दूसरे सब मिथ्यात्वको दृढ़ करते हैं जबकि मुमुक्षु मिथ्यात्वको क्षीण करता है। (मिथ्यात्व) जो कि सबसे बड़ा जीवका दुश्मन है उसे जीवको मारना है। बलवान दुश्मन है वह पहले कमज़ोर/बीमार न हो जाये तब तक उसका मरना मुमकिन नहीं। तंदुरूस्त और सेहतमंद हो जब तो जीवकी अनन्त शक्ति भी इसके आगे नाकाम रहती है। जीवमें कितनी ताकात है? अनन्त शक्ति सम्पन्न होने पर भी जीव मिथ्यात्वके आगे हारता है और अबतक हारता आया है और अनन्तकालसे संसारमें भटका और दुःखी हुआ है। ऐसे मिथ्यात्वको कमज़ोर/बीमार कौन करता है? कि मुमुक्षु कमज़ोर कर देता है! ऐसा बीमार कर दे, ऐसा बीमार कर दे, ऐसा बीमार कर दे कि मृत्युतुल्य कर देता है। फिर वह मरता है, ऐसा है। अतः ऐसी स्थितिमें मिथ्यात्वकी मौजूदगीको नहीं देखता है अपितु वह मुमुक्षु है इस बातको महत्व देना है।

'सर्व श्रुतका केन्द्रस्थान सर्वोत्कृष्ट ऐसा परमपद है।' सभी शास्त्रोंका **center point** केन्द्रस्थान मतलब **center point** ज्ञानियों व शास्त्रकारों इस एक ही जगह, एक ही बातको **centralize** करते हैं, केन्द्रित कर लेते हैं। कि आखिरकार तू अपने स्वरूपमें समा जा और स्वरूपकी साधना कर! *'सर्व श्रुतका केन्द्रस्थान सर्वोत्कृष्ट ऐसा परमपद है। वह निजपद है।'* जो परमपद है सो तेरा निजपद है। *'जिसमें अनन्त चैतन्य अमृतरस भरा है।'* इस परमपदमें क्या भरा है? कितना भरा है? कि जिसकी कोई हद नहीं उतना।

मुमुक्षु :– निरंतर प्रवाह निकलता ही रहा है।

पूज्य भाईश्री :– चाहे कितना भी बाहर न आ जाये भीतरमें इतना ही **intact** इसमें तनिक भी कम नहीं होता। – ऐसा अक्षयपात्र है स्वयं आत्मा। अनन्तकाल तक अनन्त परमानन्द भोगे तो भी भीतरमें परमानंद शक्ति इतनी ही। कितनी? निगोदमें अनन्त काल पहले थी वैसी की वैसी। केवलज्ञान अनन्तकाल तक रहे तो भी भीतरमें सर्वज्ञशक्ति वैसी की वैसी रहती है – अक्षयपात्र है! वैसे अनन्त चैतन्यरस भरा है। कितना? अनंत चैतन्यरसका अमृत रस भरा है। इसके रसास्वादरूप अनुभवको स्वआचरण कहते हैं। उसका रसास्वादरूप जो अनुभव है उसे स्वआचरण कहते हैं। उसे स्वरूपका विश्राम भी कहा जाता है क्योंकि सारी थकान वहाँ उतर जाती है। जिसे स्वरूपविश्राम भी कहते हैं। और उसे साम्यभावरूप धर्म भी कहा जाता है। यह साम्यभावरूप धर्म है।

मुमुक्षु :– साम्यभाव कहो या समताभाव कहो...

पूज्य भाईश्री :– हाँ, समभाव, साम्यभाव, समताभाव सब एकार्थ है। या राग–द्वेष रहित भाव, वीतराग भाव या ज्ञाताभाव – सब एकार्थ है। *'उस निजकल्याणसे तृप्ति होती है।'* इससे जीवको तृप्ति होती है। तृप्त–तृप्त दशा रहती है। *'वह सुखरूप है,..'* स्वयं ही सुखस्वरूप है। *'और अनन्त सुखका मूल है। फिर रंचमात्र भी दुःख नहीं रहता।'* फिर कभी थोड़ा दुःख भी नहीं भोगना पड़ता – ये सबका मूल भावनामें है। बातको घूम–फिरके देखें तो *'सबका मूल भावनामें है।'*

कोई भी जीव बिलकुल नया–नया हो! पहले–पहले आया हो, वह कभी भी भावनामें प्रवेश कर सकता है। आ जानेमें जीवको देर नहीं लगती। देखो! प्रथम सीढ़ी पर चढ़ना कितना आसान है! सरल, सुगम कोई भी जीव किसी भी वक्त बिलकुल नया–नया हो तब भी ऐसी भावनामें आ सकता है। खुदके सुखी होनेकी भावनामें कौन जीव आना नहीं चाहेगा? और जो नहीं आता उसे जीव कहें भी कैसे? उसे तो जड़ ही कहना चाहिये न! उसे जीव क्या कहें? वरना जीव तो सुखी होनेके लिये ही बना हुआ है। दुःखी होनेके लिये नहीं।

मुमुक्षु :– बना हुआ है?

पूज्य भाईश्री :– हाँ, जीव तो सुखी होनेका ही पात्र है। क्योंकि अनन्त सुखका धाम स्वयं ही है। भले ही नयी उत्पत्ति नहीं हुई परन्तु जो अनादिका constitution – रचना है वह तो सुखधामरूप ही है।

मुमुक्षु :– भाईश्री! सत्पुरुषकी गैरमौजूदगी हो तब भी अगर भावना प्रबल हो तो सत्पुरुष भी मिल जाये ऐसी भावनाकी ताकत है!

पूज्य भाईश्री :– हाँ, ताकत है। अरे! यह भावना चौदह ब्रम्हांडको हिलाती है। सत्पुरुष तो क्या चीज़ है? किस खेतकी मूली? ऐसी बात है। देखो! इसका भी सबूत है, कोई कल्पित बात नहीं है। इसके सबूत मौजूद हैं। सर्वज्ञ वीतराग तीर्थंकर जिनेन्द्रदेव, उनका समवसरण क्यों एक जगह से दूसरी जगह जाता है यह मुझे बताईये। उन्हें तो कोई राग है नहीं। उनके ज्ञानमें तो सिर्फ इतना झलकता है कि इस जगह पर पात्र जीव है। इतना दूर है यहाँ तक पहुँचना नामुमकिन है। तो क्या? समवसरण वहाँ जाता है! वीतरागका समवसरण वहाँ जाता है। इनके पीछे पूरा–पूरा समूह, इन्द्र, असंख्य देवोंके साथ और सभी जीवोंका समूह तेज़ीसे वहाँ जाता है। अब (सोचिये) कोई पात्रतावान व भावनावान होगा तब तो समवसरण जाता होगा न! वरना समवसरण क्यों जाता? वहाँ से कुछ लेनेका है क्या? फिर सत्पुरुष तो किस खेतकी मूली? सर्वज्ञ भी जाते हैं तो सत्पुरुषकी क्या वात करें?

मुमुक्षु :– (मुमुक्षुके लिये) सत्पुरुष और सर्वज्ञमें कोई फ़र्क है?

पूज्य भाईश्री :– नहीं, अपने कार्यकी अपेक्षा कोई फ़र्क नहीं। ये तो फ़र्क मानें तो भी भावनाके आगे किसीकी ताकत ही नहीं। सर्वज्ञकी नहीं है फिर किसकी हो सकती है? भावनासे ताकतवर कोई नहीं। और भावना कोई भी जीव कर सकता है चाहे बिलकुल नया प्रवेश

क्यों न हुआ हो? पहले ही धमाकेमें ब्रम्हांडको हिला दे ऐसी सुंदर चीज़ है।

मुमुक्षु :- मार्ग बहुत सरल है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ!

मुमुक्षु :- भगवान भक्तिवश होते हैं!

पूज्य भाईश्री :- अन्यमतमें तो यह बहुत प्रसिद्ध है। भक्तके वश भगवान यह बात अन्यमतमें तो बहुत प्रसिद्ध है।

मुमुक्षु :- भावना ही भक्ति है। उसे ही भक्ति कहें?

पूज्य भाईश्री :- हाँ! भावनामें से सबका जन्म होता है न! सबका मूल भावनाको लिया न? *'कोई भी जीव किसी भी वक्त भावनामें आ सकता है! भावनाका महत्व यदि समझे तो स्व-परकी भावना-विरुद्धता नहीं होती।'* न तो स्वयंकी भावनासे विरुद्ध जायेगा, न तो किसी दूसरेकी भावनासे विरुद्ध जायेगा। अगर इसका स्वरूप समझा हो तो। कईबार क्या होता है कोई कहता है मेरी भावना थी इसलिये मैंने ऐसा किया, मैं दूसरेकी नहीं सोचता, मेरी भावना है इसलिये मुझे ऐसा करना है बस!

मुमुक्षु :- क्या इसे प्रयोजनकी पकड़ नहीं कहेंगे?

पूज्य भाईश्री :- प्रयोजनकी पकड़ होनेके साथ इसमें विवेक होता है। भावनावानतो विवेकयुक्त होता है। यदि विवेकका अभाव हो तो इसमें भावना कितनी है या राग कितना है यह देखनेवाली बात है। क्योंकि रागसे ज्ञान आवरित होता है, ज्ञान आवरित होता है। रागसे ज्ञान कुंठित होता है, जबकि भावनासे तो ज्ञान खिलता है।

मुमुक्षु :- फिरसे बताईये क्यों कुंठित होता है?

पूज्य भाईश्री :- कुंठित होना मतलब मूर्च्छित होना। उस पर आवरण आ जाता है। या समझो विवेक शून्यता उत्पन्न होती है। रागके कारण विवेक छूट जाता है मतलब ज्ञान तब मूर्च्छित हुआ कि नहीं? मुरझा जाना मतलब? जैसे खिलना होता है न। उस खिलनेसे विरुद्ध होना मतलब मुरझा जाना।

मुमुक्षु :- भाईश्री! कमलका फूल खिलता है और विदा हो जाता है न!

पूज्य भाईश्री :- वह शामको विदा हो जाता है। हीन्दीमें कोई शब्द नहीं मिलता है 'बिडाई जवानो।'

मुमुक्षु :- मुरझा जाना।

पूज्य भाईश्री :- मुरझा जाना कुछ हद तक लागू पड़ता है। दूसरोंकी भावनाका अनुमोदन करना यह भावनावालेकी विशेषता है। भावनाकी यह विशेषता है - ऐसा है। और दूसरोंकी भावनाकी विरुद्धता होना यह भावनाकी क्षति है। उसमें रागकी प्रधानता काम करती है, भावनाकी प्रधानता नहीं रहती, ऐसा है! क्योंकि मार्ग ऐसा है न! सम्यक्मार्ग है। इसके चारों पहलू स्पष्ट हैं। वरना जगतमें तो एक गुण प्रगट करने जाये कि साथमें दूसरा अवगुण दाखिल हो जाता है। ऐसा system है। एक गुण प्रगट करने जाये तो बकरी निकाले और ऊँट दाखिल

हो जाये! और इसका पता तक नहीं रहता। वह भ्रममें रह जाता है कि मैंने बकरेको निकाला परन्तु ऊँट भीतर आ गया इसका पता तक नहीं रहता। ये आपके दादाजी थे न! जो अभी गुज़र गये (वे कहते थे कि) हम तो निस्वार्थभावसे दान देते हैं, वैसी प्रवृत्ति करते थे न? और उसमें गरीबोंको खोज-खोजकर, ज़रूरतमंदको सामनेसे उसके घर जा-जाकर, उसे हमारे पास माँगना पड़े वैसे नहीं क्योंकि अच्छे घरानेके लोग किसीसे मांग नहीं सकते, कष्ट सह लेंगे किन्तु किसीसे माँगते नहीं इसलिये खोज कर-करके देते थे कि यह ज़रूरतमंद है भले ही मना करे तो भी आग्रहपूर्वक देते थे।

मुमुक्षु :- उसके घर जाकर तकिये नीचे रख देते थे।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, रखके आ जाते थे। पैसोंका कवर रखकर आ जाते थे। ऐसी प्रवृत्ति सारी जिंदगी, बहुत साल तक करते रहे। वे जब ऐसी प्रवृत्ति करते थे तो ऐसी प्रवृत्तिके अनुमोदन करनेवाले उनके रिश्तेदार भी उन्हें दे जाते थे। हमारी तरफसे भी कीजियेगा और अच्छे खासे पैमानेमें ऐसा कार्य करते थे। एक (थैली) रख दे जिसमें जिसको देना हो डाल देते थे। किसने कितना डाला नहीं देखते थे।

अब एक बार उनसे मिलना हुआ तो मुझे पूछा उन्होंने कि इसमें हम क्या गलत कर रहे हैं? बताईये और क्या यह धर्म नहीं है? यह अच्छा धर्म नहीं है? इसमें कौनसा पहलू दूषित है? बात तो यहाँ तक हुई कि इसमें किसी पहलूसे हमें दोष लगता है क्या? (फिर मैंने पूछा) कि, इतना अच्छा कार्य मैं कर रहा हूँ ऐसा अहम्भाव जाने-अनजानेमें कभी होता है क्या? तो कहा थोडा-बहुत हो जाता है? बस! तो कहा, यह बकरा निकाला और ऊँट घुस गया। क्योंकि पर्यायदृष्टि जीव है वह जिस पर्यायरूप परिणमन करता है उस पर्यायका अहम्भाव हुए बिना रहेगा ही नहीं। जबकि सत्पुरुष-ज्ञानीपुरुषके मार्गकी योजना ऐसी है कि, शुरूसे पर्यायबुद्धिको दृढ नहीं होने देवे।

मुमुक्षु :- नहीं होने देगी?

पूज्य भाईश्री :- नहीं होने देगी। पर्यायदृष्टिका नाश भले ही चतुर्थ गुणस्थानमें सम्यगदृष्टि-द्रव्यदृष्टि प्रगट होगी तब होगा। परन्तु मुमुक्षुताके प्रारम्भसे लेकर, शुरूआतसे लेकर अंत तक वह पर्यायबुद्धिको तोड़ता जाता है। दृढ़ तो नहीं होने देगा परन्तु तोड़ता जायेगा। - ऐसी जो योजना है उसे ज्ञानीका मार्ग कहते हैं। ऐसी विशिष्ट प्रकारकी यह बात है। यह लाइन ही विशिष्ट प्रकारकी है पूरी। पढ़नेको तो पढ़ ले परन्तु इनमें से निकलता है बहुत कुछ। सिर्फ पढ़नेसे इतनी स्पष्टता नहीं होती जितनी सत्संगके दौरान स्पष्टता होती है।

मुमुक्षु :- भाईश्री! यह तो सत्संग दौरान इतना खुलासा होता है वरना मुमुक्षु-मुमुक्षुके काम करे उसमें भी यही भूल हो जाती है। सत्संगमें इतनी चर्चा होती है तब बचना हो जाता है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, हो ही जाये, वरना हुए बिना बचे ही नहीं। आधार क्या है उसे? ऐसा न हो इसके लिये साधन क्या है उनके पास? मैंने उनको पूछा था कि ऐसा अहम्भाव

न हो इसके लिये आपके पास क्या साधन है? अब इसका विचार भी कभी न किया हो तो साधनकी तो बात ही कहाँ रही? कि यह ऊँट घुस गया इसका पता तक न हो तो निकालनेका विचार तो आयेगा कहाँसे उसको?

मुमुक्षु :- मिठास लगती है।

पूज्य भाईश्री :- अरे! ऐसी मिठास बढ़े, ऐसी मिठास बढ़े कि क्या बताये!!

मुमुक्षु :- परकी (दूसरेकी) भावनाका अनुमोदन होगा इसमें क्या कहना चाहते हो?

पूज्य भाईश्री :- अनुमोदन होनेका मतलब है कि खुद भावनावान होगा वह दूसरेकी भावनाको देखकर उसका अनुमोदन करेगा। जैसेकि अपने यहाँ क्या होता है? कि, गुरुदेवश्रीके अनुयायी बहुत लोग थे और कईबार तो जगहके लिये मारामारी हो जाती थी। सबको आगे जानेका मन हो, यात्रा हो, या दूसरे-दूसरे प्रसंग हों, प्रतिष्ठाका प्रसंग हो तो वहाँ **gathering** बहुत बड़ा हो जाता था, तो ऐसेमें भावनावाला होगा वह दूसरेकी भावना जब देखेगा तो कहेगा - 'पहले आप' ऐसा कहेगा। अपने यहाँ ही देखो न! कोई नया आदमी आ गया तो क्या करेंगे हम? गुरुदेवके आहारका प्रसंग हो और कोई नया आदमी आ गया मानों और वह भी ऐसा कि, भाई! यह आदमी जो इसतरफ पलटेगा तो इसके पीछे बहुत लोगोंको लाभ होगा, या जो बहुत बड़ी बात मानी जाती हो तो हम क्या करेंगे? उसे खुदका स्थान जाने देंगे और उसे आगे करेंगे कि नहीं करेंगे? ऐसा **throughout** होना चाहिये। यह तो सिर्फ एक दृष्टांत लिया।

मुमुक्षु :- प्रासंगिक बात हो गई।

पूज्य भाईश्री :- यह बात प्रासंगिक है लेकिन **throughout** ऐसा ही होना चाहिये तब तो आपकी भावना यथार्थ है। इसतरह भावना जैसी सुंदर चीज़ और कोई नहीं। भावना जैसी सुंदर चीज़ कोई नहीं है क्योंकि वह ज्ञानको निर्मल करती है। सबसे पहले क्या काम होता है? इसका सीधा **repercussion** ज्ञान - बुद्धि पर आता है। ज्ञानको निर्मल और सरल कर दे। जैसे ही ज्ञान सरल होगा, मति भी सरल होगी ऐसे जीवको कभी तिर्यंचगति नहीं आती। क्योंकि तिर्यंचगति तो तिरछे परिणामोंका फल है। वह जीव कभी तिर्यंचगतिमें नहीं जाता। सरल परिणामी जीव मनुष्यगतिसे छूटकर फिर मनुष्य होता है। मनुष्यके बाद मनुष्य होता है जो कि देवगतिसे भी अधिक मूल्यवान वस्तु हो गई उसके लिये।

*

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (दिसम्बर-२०२५, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि

श्री परम हेमंतभाई शाह, मुंबई

की ओरसे ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।

अतएव यह पाठकोंको आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

कुंदकुंदआचार्यदेवकी अमृतवाणी !!

जैसे सिद्ध आत्मा हैं, वैसे ही भवलीन (संसारी) जीव हैं; इसलिए (वे संसारी जीव, सिद्धात्माओंके समान) जन्म-जरा-मरणसे रहित और आठ गुणोंसे अलंकृत हैं। ९

(श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, नियमसार, गाथा-४७)

✻

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु-ये पाँचो परमेष्ठी इस आत्माके ही परिणाम हैं, इसलिए आत्मा ही मुझे शरण है। १३

(श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, बारस अनुप्रेक्षा, गाथा-१२)

✻

जैसे नेत्र (दृश्य पदार्थोंका कर्ता-भोगता नहीं, देखता ही है) वैसे ही ज्ञान अकारक तथा अवेदक है और बंध, मोक्ष, कर्मोदय तथा निर्जराको जानता ही है। ४७ (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, समयसार, गाथा-३२०)

✻

ये (औदियिकादि) सभी भाव वास्तवमें व्यवहारनयका आश्रय करके (संसारी जीवोंमें विद्यमान) कहनेमें आये हैं, शुद्धनयसे संसारमें रहनेवाले सर्व जीव सिद्धस्वभावी हैं। ८८

(श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, नियमसार, गाथा-४९)

✻

कर्मके उदयका विपाक (फल) जिनवरोंने अनेक प्रकारका वर्णन किया है वह मेरा स्वभाव नहीं है; मैं तो एक ज्ञायकभाव हूँ। ९४

(श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, समयसार, गाथा-१९८)

✻

जिस प्रकार लोकाग्रमें सिद्ध भगवंत अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा (विशुद्ध स्वरूपी) हैं, उसी प्रकार संसारमें (सर्व) जीव जानना। १०१

(श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, नियमसार, गाथा-४८)

✻

निश्चयनयका स्वरूप ऐसा है कि एकद्रव्यकी अवस्था जैसी हो, उसीके कहे। आत्माकी दो अवस्थायें हैं – एक तो अज्ञानावस्था और एक ज्ञानावस्था। जब तक अज्ञानावस्था रहती है, तब तक तो बंधपर्यायको आत्मा जानता है-कि मैं मनुष्य हूँ, मैं पशु हूँ, मैं क्रोधी हूँ, मैं मानी हूँ, मैं मायावी हूँ, मैं पुण्यवान-धनवान हूँ, मैं निर्धन, दरिद्री हूँ, मैं राजा हूँ, मैं रंक हूँ, मैं मुनि हूँ, मैं श्रावक हूँ इत्यादि पर्यायोंमें आपा मानता है, इन पर्यायोंमें लीन होता है, तब तक यह मिथ्यादृष्टि है, अज्ञानी है, इसका फल संसारमें उसको भोगना

पड़ता है। १०५ (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, मोक्षपाहुड़, गाथा–८३)

*

जो जीव पर्यायोंमें लीन है, उन्हें परसमय कहा गया है; जो जीव आत्मस्वभावमें स्थित है, वे स्वसमय जानना। १३० (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, प्रवचनसार, गाथा–९४)

*

पुण्य और पापमें अन्तर नहीं है, ऐसा जो नहीं मानता, वह मोहाच्छादित वर्तता हुआ घोर अपार संसारमें परिभ्रमण करता है। १५३ (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, प्रवचनसार, गाथा–७७)

*

परद्रव्यसे दुर्गति होती है और स्वद्रव्यसे सुगति होती है। यह स्पष्ट (प्रगट) जानो, इसलिए हे भव्य जीवो! तुम इस प्रकार जानकर स्वद्रव्यमें रति करो और अन्य जो परद्रव्य, उनसे विरति करो। १६४

(श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, मोक्षपाहुड़, गाथा–१६)

*

जैसे परद्रव्यमें रागको कर्मबन्धका कारण पहले कहा, वैसे ही रागभाव यदि मोक्षके निमित्त भी हो तो आस्रवका ही कारण है, कर्मका बन्ध ही करता है। इस कारणसे जो मोक्षको परद्रव्यकी तरह इष्ट मानकर वैसे ही रागभाव करता है तो वह जीव मुनि भी अज्ञानी है, क्योंकि वह आत्मस्वभावसे विपरीत है, उसने आत्मस्वभावको नहीं जाना है। १७२ (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, मोक्षपाहुड़, गाथा–५५)

*

जो निजभावको छोड़ता नहीं और किंचित् भी परभावको ग्रहण नहीं करता, सर्वको जानता और देखता है, वह मैं हूँ–ऐसा ज्ञानी चिन्तवन करता है। १९३ (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, नियमसार, गाथा–९७)

*

हे मुनिजनो! यदि चारगतिरूप संसारसे छूटकर शीघ्र शाश्वत् सुखरूप मोक्षको तुम चाहो तो भावसे शुद्ध जैसे हो वैसे अतिशय विशुद्ध निर्मल आत्माको भाओ। २१५

(श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, भावपाहुड, गाथा–६०)

*

यह जिन–वचनरूपी औषध विषयसुखका विरेचन करनेवाला है, भव्य जीवोंको अमृत समान है, जिनवचनके सेवनसे भव्य जीव अमर बनते हैं। इसलिए यह जिन–वचनरूपी औषध जरा–मरणका नाशक है। दीर्घकाल तक रहनेवाले रोग और अकस्मात् उत्पन्न होनेवाली व्याधिको जिन–वचन तत्काल नष्ट करते हैं। सर्व दुःखोंका नाश करके मुक्ति–सुख देते हैं। इसलिए हे मुनि! ऐसे जिन–वचनरूपी औषधका तू सतत् सेवन कर। २४७ (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, मूलाचार, अधिकार–२, गाथा–९१)

* (श्री 'परमागम–चिंतामणी' में से साभार उद्धृत)

पूज्य बहिनश्रीकी मुनिभक्ति

यहाँ (श्री प्रवचनसार प्रारम्भ करते हुए) कुन्दकुन्दाचार्य–भगवानको पंच परमेष्ठीके प्रति कैसी भक्ति उल्लसित हुई है! पांचों परमेष्ठीभगवंतोंका स्मरण करके भक्तिभावपूर्वक कैसा नमस्कार किया है! तीनों कालके तीर्थंकरभगनवंतोंको – साथ ही साथ मनुष्यक्षेत्रमें वर्तते विद्यमान तीर्थंकरभगवंतोंको अलग स्मरण करके – 'सबको एकसाथ तथा प्रत्येक–प्रत्येकको मैं वंदन करता हूँ' ऐसा कहकर अति भक्तिभीने चित्तसे आचार्यभगवान नम गये हैं। ऐसे भक्तिके भाव मुनिको–साधकको – आये बिना नहीं रहते। चित्तमें भगवानके प्रति भक्तिभाव उछले तब, मुनि आदि साधकको भगवानका नाम आने पर भी रोमरोम उल्लसित हो जाता है। ऐसे भक्ति आदिके शुभ भाव आयें तब भी मुनिराजको ध्रुव ज्ञायकतत्त्व ही मुख्य रहता है इसलिये शुद्धात्माश्रित उग्र समाधिरूप परिणमन वर्तता ही रहता है और शुभभाव तो ऊपर–ऊपर ही तरते हैं तथा स्वभावसे विपरीतरूप वेदनमें आते हैं। ४०७

*

मुनिराजके हृदयमें एक आत्मा ही विराजता है। उनका सर्व प्रवर्तन आत्मामय ही है। आत्माके आश्रयसे बड़ी निर्भयता प्रगट हुई है। घोर जंगल हो, घनी झाड़ी हो, सिंह–व्याघ्र दहाड़ते हों, मेघाच्छन्न डरावनी रात हो, चारों ओर अंधकार व्याप्त हो, वहाँ गिरिगुफामें मुनिराज बस अकेले चैतन्यमें ही मस्त होकर निवास करते हैं। आत्मामेंसे बाहर आयें तो श्रुतादिके चिंतवनमें चित्त लगता है और फिर अंतरमें चले जाते हैं। स्वरूपके झूलेमें झूलते हैं। मुनिराजको एक आत्मलीनताका ही काम है। अद्‌भुत दशा है! ३९४

पूज्य भाईश्री शशीभाईकी ९३वीं जन्म जयंती आनंदोल्लासपूर्वक संपन्न

आत्मानुभवसंपन्न परम उपकारी पूज्य भाईश्री शशीभाई की ९३वीं जन्म जयंती 'श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर', भावनगरमें आनंदोल्लासपूर्वक मनाई गई । इस मंगल अवसर पर बंबई, कोलकाता, अहमदाबाद, आग्रा, बड़ौदा, सोनगढ़ इत्यादि शहरोंसे अनेक मुमुक्षुओंने लाभ लिया। दि. २७–११–२०२५ के दिन जिनमंदिरजीसे एक भव्य रथयात्राका आयोजन किया गया।

दि. २८–११–२०२५ जन्म जयंतीके दिन बालकुंवरका पालनाझूलन, जन्मबधाई, गुरुभक्ति एवं 'अध्यात्मपिपासा' भाग–६ (गुजराती) का विमोचन आदि कार्यक्रम सानंद संपन्न हुए ।

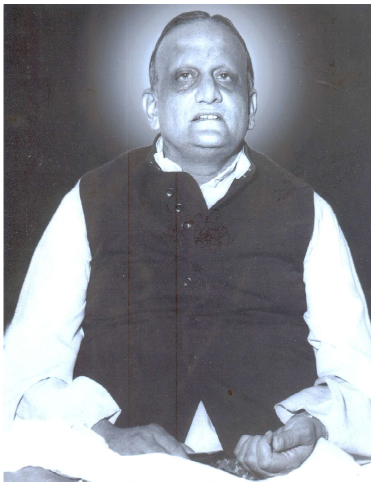

‘मार्गदर्शन’

– ‘द्रव्यदृष्टि प्रकाश’ – पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी

प्रश्न : यह सभी बात सत्य है, लेकिन विकल्प टूटता नहीं है?

उत्तर : विकल्पसे क्यों ड़रते हो? इसको भी इसीकी सत्तामें रहने दो; और तुम तुमारी त्रिकाली सत्तामें रहो। विकल्पको तोड़ने–मोड़ने जाओगे तो तुमारी ध्रुवसत्ताका (श्रद्धामें) नाश होगा, और फिर भी ये विकल्प तो टूटेंगे नहीं। ४९१.

*

स्वच्छंदसे डरो मत! (स्वरूपके अभानमें) अभी तक स्वच्छंद ही तो चलता आया है। अब तो ‘सहज स्वच्छंद (–स्वमें प्रवृत्तिरूप) दशा’ प्रकट करो! विवेक अपने आप आ जाएगा। ४९५.

*

शास्त्र इधरसे (आत्मामेंसे) निकलते हैं तो इधरसे निकली सब बातें शास्त्रसे मिल जाती हैं। शास्त्र देखकर इधरका मिलान नहीं करना है, किन्तु इधरसे निकली बात शास्त्रसे मिलान कर लेना। (शास्त्र देखकर स्वयंकी समझको मिलान करनेकी पद्धति उचित नहीं है कयोंकि इस पद्धतिसे स्वयंके अभिप्राय अनुसार शास्त्रवचनका अर्थघटन (समझ) होनेकी संभावना है; और इसमें जो भूल रही हो तो वह शास्त्राधारसे और दृढ़ हो जाती है; साथ ही ऐसी पद्धतिसे ज्ञानीके वचन भी शास्त्र–आधारसे स्वीकार करनेका अभिप्राय रह जाता है जिससे प्रत्यक्ष सत्पुरुषके वचनपर प्रीति/भक्ति/ विश्वास नहीं रहता। अतएव समझी हुई बातको, अनुभवपद्धतिसे समझना चाहिए; और वैसे अनुभवको शास्त्रसे मिलान करना ही सही पद्धति है; अर्थात् उपादानकी मुख्यतावाली पद्धति ही सही पद्धति है)। ५०२.

*

निर्विकल्पता पर वज़न नहीं देना (पर्याय पर वज़न नहीं देना) – यह मेरेसे (ध्रुव पदसे) बड़ी थोड़े–ही है? ५०३.

*

प्रश्न :– गुरुदेवश्रीकी बात भी अच्छी लगती है और बाहरकी अनुकूलता भी अच्छी लगती है; जब कि गुरुदेवश्री फ़रमाते हैं कि ‘‘एक म्यानमें दो तलवारें नहीं रह सकती’’?

उत्तर :– एक शुभ है, एक अशुभ है – दोनों जगहोंसे हटकर, तीसरी (शुभाशुभ रहित) जगह आ जाओ। ५१७.

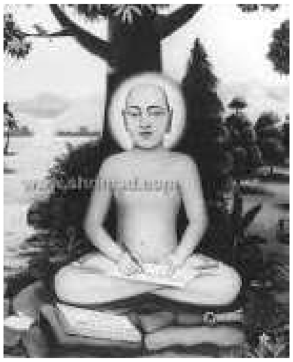

एक समर्थ आचार्य– श्री कुंदकुंदाचार्यदेव!

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

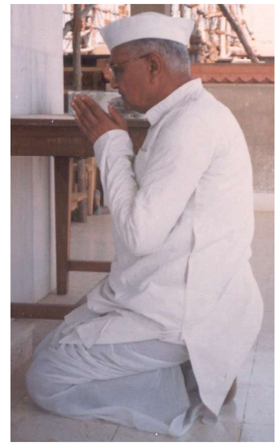

श्री समयसार जैसी कृति जो कुंदकुंदाचार्यजीने की, इस कृति परसे इनकी महानताके दर्शन होते हैं, उनकी स्वभावदृष्टि के दर्शन होते हैं। उन्हें न केवल स्वभावदृष्टि थी, इससे अतिरिक्त स्वभावदृष्टिकी अभिव्यक्ति उन्होंने शब्दोंमें ग्रंथारूढ़ करके **fantastic** काम किया है। अति-अति सामर्थ्यके बलसे ऐसा लिखा है। उनके सामर्थ्यके द्वारा लोगोंने उनकी महानताके दर्शन किये हैं।

एक समर्थ आचार्य हुए, दिगम्बर आचार्योंकी परम्परा में देखा जाये तो कुंदकुंदाचार्य बहुत समर्थ आचार्य हो गये, ऐसी प्रतीति इनकी कृतियों से होती है। आज भी, सैंकडों-हजारों साल पश्चात भी उनके वचनों को आधारभूत – **authentic** गिने जाते हैं। अच्छा! क्या यह कुंदकुंदाचार्य का वचन है? फिर तो बात ही खत्म हो जाती है। बात खत्म! ऐसे **authentic** वक्ता हैं वे। गुरुदेवश्री तो समयसार पर आफरीन हो जाते थे। कुंदकुंदाचार्यदेवकी स्वभावकी अभिव्यक्ति करानेकी शैली, स्वभावदृष्टिकी अभिव्यक्ति जबरदस्त है!!

(प्रवचनांश... 'श्रीमद् राजचंन्द्र', प्र.क्र.-६६९)

*

दक्षिण भारतमें मद्रासमें भी आगे आजसे २००० साल पहले कुन्दकुन्दाचार्य विचरते थे। जिनकी आत्मस्थिरता बहुत थी। कैसी? बहुत उग्र आत्मस्थिरता थी। फिर भी जितना उपयोग बाहर आता था उसमें समयसार जैसे महान शास्त्रोंकी रचना हो जाती थी। उनका वचनयोग! समयसार आदि शास्त्र जो लिखे वह उनका वचनयोग!! बहुत समर्थ पुरुष! तो अभी २००० वर्ष बाद पूज्य गुरुदेवश्रीका उदय हुआ देखो! कैसा चमत्कार हुआ। गुरुदेवश्री तो ऐसा कहते थे कि समयसार तो उन्होंने मेरे लिये लिखा था। २००० साल पहले उन्होंने समयसार क्यों लिखा? कि, मेरा आत्मकल्याण जो होना था इसलिये उन्होंने लिखा वरना ऐसे आत्मस्थिरता धारक महात्माको बाहर आना कैसे हो? वे क्यों बाहर आते जो कि जंगलमें रहते हो परन्तु, मेरे जैसा कोई (भाग्यशाली) होगा तब तो इन्होंने मेरे लिये लिखा। और उन्होंने लिखा तो कितने लोगों पर वह समयसारका प्रभाव दिख रहा है देखिये वर्तमानमें। कितने ही जीव संस्कार लेकर गये होंगे, कितने ही आत्महित कर गये होंगे! किसको पता है कि कैसे-कैसे आत्मार्थी जीव हुए होंगे!! ऐसा बनता है। यह एक संकेत है कि ऐसे (नित्कृष्ट) कालमें जन्म हुआ तो इसके पीछे कुछ न कुछ (संकेत होता है।) वरना ऐसे दुषमकालमें ऐसे (जीव) कहाँ से हो! ऐसा कहते हैं।

(प्रवचनांश... 'श्रीमद् राजचंन्द्र', प्र.क्र.-६८४)

*

"मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं।।"

"बनावुं पत्र कुन्दननां रत्नोना अक्षरो लखी।
तथापि कुन्दसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।।"

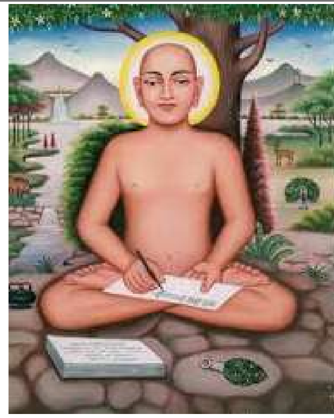

हे कुन्दकुन्द आदि आचार्यों! आपके वचन भी स्वरूपानुसंधानमें इस पामरको परम उपकारभूत हुए हैं। इसके लिये मैं आपको अतिशय भक्तिसे नमस्कार करता हूँ। – श्रीमद् राजचंद्र

(आभ्यंतर परिणाम अवलोकन–संस्मरणपोथी २, पृष्ठ ४५)

भगवान श्री कुन्कुन्दाचार्यदेव समयप्राभृतमें कहते हैं कि " मैं जो यह भाव बतलाना चाहता हूँ, वह अन्तरके आत्मसाक्षीके प्रमाणसे प्रमाणित करना कारण कि यह अनुभवप्रधान शास्त्र है, जो अपने प्रवर्तित निज आत्म–वैभव द्वारा कहा गया है। छठवीं गाथा शुरू करते हुए आचार्य भगवान कहते हैं कि –"आत्मद्रव्य अप्रमत्त नहीं और प्रमत्त नहीं, अर्थात् इन दो अवस्थाओंका निषेध करता हुआ मैं एक ज्ञायक अखंड हूं... यह मेरी वर्तमान वर्तती दशाके आधारसे कहता हूँ। " मुनिपनेकी दशा अप्रमत्त और प्रमत्त... इन दो भूमिकाओंमें हजारों बार आया करती है, उन भूमिकाओंमें वर्तते महामुनिका यह कथन है।

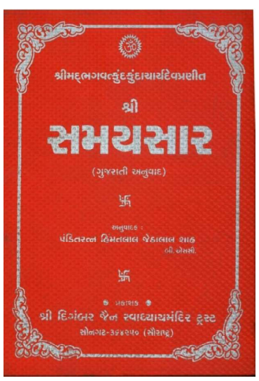

समयप्राभृत, अर्थात् समयसाररूपी भेंट। जैसे राजासे मिलनेके लिये भेंट देनी पड़ती है, वैसे ही स्वयंकी परम उत्कृष्ट आत्मदशा स्वरूप परमात्मदशा प्रगट करनेके लिये समयसारको सम्यक् दर्शन–ज्ञान–चारित्र स्वरूप आत्माकी परिणतिरूप भेंट देने पर ही परमात्मदशा–सिद्धदशा प्रगट होती है।

इस शब्द ब्रह्मरूप परमागम द्वारा दर्शित एकत्व–विभक्त आत्माको प्रमाणित करना, ऐसे ही 'हां' नहीं कहना, कल्पना नहीं करना। इसका बहुमान करने वाले भी महा भाग्यशाली हैं। – पूज्य गुरुदेवश्री

(श्री 'परमागमसार' बोल क्र.–१)

*

यह शास्त्र तो परमार्थ स्वरूप और वैराग्य उत्पादक है। समयसार शास्त्र परमप्रभु परमात्माको बताने वाला है व पर की तरफसे उदासीन कराने वाला है। निज पूर्ण स्वरूपको प्राप्त ऐसा जो परमार्थ स्वरूप (आत्मा) को बतलाने वाला व विकल्पसे उदासीन कराने वाला यह समयसार शास्त्र वैराग्य–प्रेरक है।

(श्री 'परमागमसार' बोल क्र.–१९)

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 70640/97
Title Code : GUJHIN00241
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर एस्टेट, बारडोलपुरा, अहमदाबाद - ३८० ०१६ से मुद्रित एवं १९४२ - बी, शशीप्रभु मार्ग, रूपाणी, भावनगर - ३६४ ००१ से प्रकाशित ।

संपादक : श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा - 98250 52913

Printed Edition : **3535**
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...

Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur process 9374825041